



प्राचीन भारतीय शिक्षा में पर्यावरण संचेतना : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. महबूब खान मुगल

सहायक आचार्य-भूगोल, सहायक आचार्य-भूगोल, राजकीय महाविद्यालय, सूरतगढ़

डॉ. सुरेंद्र चौधरी

सहायक प्रोफेसर, एसएनडीबी सरकार, पी.जी. कॉलेज, नोहर

ABSTRACT:

मानव अपनी उत्पत्ति के समय से ही प्रकृति का उपभोग अपने आवास, भोजन, वस्त्र जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए करता आया है किन्तु मानवीय आवश्यकताओं की प्रकृति, सभ्यता के विकास के साथ-साथ बदलती गई एवं इसी के साथ प्रकृति का अविवेकपूर्ण विदोहन भी प्रारम्भ हुआ। मानवीय जीवन व सभ्यता के विकास के इतिहास का 90 फीसदी भाग मानव-प्रकृति के मध्य संतुलित सम्बन्धों वाला रहा है मात्र 10 फीसदी भाग जिसे हम आधुनिक युग के नाम से जानते हैं मानव-प्रकृति के असंतुलित सम्बन्ध का भयावह स्वरूप प्रकट करता है। मानव की वर्तमान आधुनिक क्रियाओं का इतिहास महज 200 से 300 वर्ष ही प्राचीन है और इन 200-300 वर्षों की अपनी अंधी विकास की दौड़ में मानव ने प्रकृति व प्राकृतिक संसाधनों का इस हद तक दोहन किया है कि ना केवल मानव जाति अपितु सम्पूर्ण जीव जगत के लिये अस्तित्वमूलक प्रजन् ला खड़ा किया है, अन्य प्राणी जगत बुद्धिहीनता के कारण इस विकट परिस्थिति के समाधान में अपना योगदान भी नहीं दे सकते हैं और इस विकराल समस्या का स्रोत भी मानव है तो निदान भी केवल मात्र बुद्धिपाली मानव के पास ही है।

आधुनिक आर्थिक मानव ने न केवल प्रकृति अपितु सभ्यता और संस्कृति जैसे वाक्याणुओं को भी विक्षुब्ध किया है। सभ्यता का अर्थ जहाँ सभी के प्रति सम्य व पिष्टाचार व्यवहार का आचरण है वहीं संस्कृति का अर्थ सुधारना या सुन्दर बनाना है किन्तु वर्तमान समय में सभ्यता व संस्कृति को विकास के नजरिये से देखा जाता है और इनके अर्थ भी आर्थिक रूप से विकसित सभ्यता व संस्कृति के रूप में व्यक्त किये जाने लगे हैं। इसी का परिणाम है कि आज के आधुनिक मानव के समक्ष पर्यावरण प्रदूषण, पर्यावरण अवनयन, कार्बन उत्सर्जन, रेडियोधर्मी प्रदूषण, ओजोन विनाश, अति वृष्टि, बाढ़, अकाल, हिमखण्डों का पिघलना, अम्लीय वर्षा, भूमंडलीय ऊष्मन जैसी भयावह पर्यावरणीय आपदाएँ विकराल रूप लिए खड़ी हैं।

आज की पर्यावरणीय परिस्थितियों व समस्याओं का पूर्वाभास हमें हमारी भारतीय संस्कृति के प्राचीन स्वरूप में दिखाई देता है। भारतीय संस्कृति व परम्पराओं में प्रकृति व पर्यावरण के विभिन्न तत्वों को संतुलित रखने व उनका संवर्द्धन करने के अनेक उपचार अपनाए गये हैं। आज की वर्तमान दशाओं में उन प्राचीन परम्पराओं व उपचारों को अपनाते ही महती आवश्यकता है ताकि प्राचीन भारतीय परम्परा के मूल सिद्धान्त- शर्वे भवन्तु सुखिनः श में छिपे उद्देश्य की पूर्ति संभव हो सके।

शोध उद्देश्य- प्रस्तुत लघु शोध का प्रमुख उद्देश्य वर्तमान पर्यावरणीय समस्याओं एवं उनकी भयाव्यता को उजागर करना है तथा वर्तमान पीढ़ी में पर्यावरण के प्रति संचेतना व जागरूकता का बढ़ाना है। साथ ही भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण व संवर्द्धन के उपचारों को उजागर कर भारतीय परम्पराओं की समृद्धता को बताना है और उन परम्परागत मूल्यों में आज की प्रकृति की समस्याओं का समाधान ढूँढना भी है। प्रस्तुत शोध का एक उद्देश्य पाश्चात्य सभ्यता के लालुपतापूर्ण व स्वार्थयुक्त धारणाओं व भारतीय संस्कृति की उत्तम धारणाओं व मूल्यों में अंतर स्पष्ट करना है। इस लघु शोध से भावी शोधकर्ताओं एवं अध्ययनकर्ताओं में भारतीय संस्कृति की सुदृढ़ व मूल्यवान धारणाओं की समझ को बढ़ाना है।

KEYWORDS:

संस्कृति, पर्यावरण, प्रकृति, सौहार्द, यज्ञ, औद्योगिकीकरण, स्वस्वार्थ, विदोहन, भूमण्डलीय ऊष्मन, अम्ल वर्षा, परम्परायें, लालुपतापूर्ण, स्वार्थसिद्धि, तिरोहित, अकाल, अतिवृष्टि, अल्पवृष्टि ।

शोध-प्रविधि- संदर्भ पुस्तकों, लेखों व लघु शोध पत्रों का अध्ययन एवं विश्लेषण, समाचार पत्र-पत्रिकायें, पर्यावरण विशेषज्ञों एवं धार्मिक ज्ञाताओं से मौखिक संवाद आदि।

परिचय-

आधुनिक आर्थिक जगत के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है पर्यावरण अवनयन एवं प्राकृतिक संसाधनों की गुणवत्ता में ह्रास। मानव ने अपने आर्थिक विकास के लिये अपने पर्यावरण का अविवेकपूर्ण विदोहन पिछले 300 वर्षों में इस स्तर तक किया है कि वर्तमान पर्यावरणीय दशाएँ मानव सहित सम्पूर्ण प्राणी जगत के सुखमय जीवन की दृष्टि से उपयुक्त नहीं रही हैं और इस स्थिति का आभास भारतीय ऋषि-मुनियों को पूर्व में ही हो गया था। भारतीय ऋषियों-मुनियों एवं धर्मग्रन्थों में समस्त पृथ्वी व सृष्टि के लिये मंगल कामना की अवधारणा जगह-जगह स्पष्ट की गई है। भारतीय संस्कृति जीव मात्र के कल्याण की धारणा में विश्वास करती है और जीव की इस संकल्पना में जीव-जन्तु, पेड़-पौधे व मानव सभी प्राणी सम्मिलित हैं। भारत की प्राचीन संस्कृति व साहित्य में प्रकृति को सम्बद्ध कर उसे पवित्रता प्रदान की है। धरती को मातृवत् मानकर जल, हवा, पर्वत, वृक्ष, नदियों, जीवों, जलाशयों और नदियों को पूजनीय मानकर उनकी सुरक्षा व संरक्षण की पूर्ण व्यवस्था की गई है।

हमारे पुरातन साहित्य में पर्यावरण की महत्ता को विभिन्न प्रकरणों एवं तरीकों से समझाने का प्रयास हुआ है। ज्ञान व नीतिपरक पंचतंत्र की कहानियों में तथा बौद्ध जातक कथाओं में अनेक प्रसंग वन व वन्य जीवों से संबंधित हैं। वर्तमान भौतिकवाद व अर्थ प्रधान समाज की चकाचौंध में हमारी पुरातन परम्पराएँ इतनी तिरोहित हो गई हैं कि वृक्ष पूजा, जीव पूजा जैसी हमारी प्राचीन प्रकृति उपासक आस्थाएँ एवं भावनाएँ मात्र प्रतीकात्मक रह गई हैं। हमारी सभ्यता भी विकास की इस अंधी दौड़ में पाश्चात्य सभ्यता के रंग में इस हद तक ढल गई है कि प्रकृति व प्रकृति के विभिन्न अंग हमारे लिये उपभोग की वस्तु बनते जा रहे हैं। अगर यही स्थिति आने वाले 50 वर्षों तक ओर बनी रही

तो हम अपनी प्राचीन संस्कृति की मर्यादाओं व भावनाओं को सदा के लिये खो चुके हों। आज का स्वार्थी मानव प्रकृति का दोहन केवल अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये कर रहा है। वन व आरण्यक भूमि को खेती व अन्य उपयोग के लिये नष्ट किये जा रहा है। गोचर भूमि, बावड़ी, झील, तालाब स्थल, नदियों के बहाव क्षेत्रों पर अतिक्रमण दिन-ब-दिन बढ़ते जा रहे हैं। प्राकृतिक आवासों के नष्ट हो जाने से ना जाने कितने ही वन्य जीवों की जातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। प्रकृति के अतिक्रमण व अतिदोहन से प्रकृति का विकराल रूप विभिन्न आपदाओं के रूप किसी से अज्ञात नहीं है। बाढ़, सूखा, अकाल, अतिवृष्टि, अल्पवृष्टि, अतिताप, अति तूफान व आँधियों की आवृतियों प्रकृति के रोद्र रूप की ओर ही इशारा करती हैं। ये सभी प्राकृतिक आपदाएँ चेतावनी हैं आज के आर्थिक मानव सभ्यता के विनाश की, यदि समय रहते हमने प्रकृति के इस तिरस्कार को बंद कर प्रकृति अनुकूल जीवन शैली को नहीं अपनाया तो वो दिन दूर नहीं जब आज की विकसित सभ्यता इतिहास के पन्नों में दर्ज हो जायेगी।

पश्चिमी सभ्यता की धारणा, “हम पिया हमारा बैल पिया अब कुऊं टूट पड़े” अर्थात् अपना और अपने आश्रितों के भले का सोचकर प्रकृति को विध्वंस कर देना। प्रकृति के विध्वंस में हम भी बराबर के भागीदार तब बन गये जब हम उदासीन रहकर ये सब देख रहे थे। अब हमें अपने पर्यावरण को शुद्ध रखने के लिये कारगर कदम उठाने ही पड़ेंगे, इसके लिये ना केवल सरकारी तंत्र, राजनीतिक तंत्र और मानव समुदायों की जवाबदेही निश्चित करने की नितांत आवश्यकता है, अन्यथा पर्यावरण असन्तुलन सारे राष्ट्र को अस्त-व्यस्त कर देगा और हम अपनी पारम्परिक प्राकृतिक अच्छाईयों को खो देंगे जिस पर हम आज तक गर्व करते आये हैं।

1. पर्यावरण व संस्कृति का अर्थ व परिभाषा :- पर्यावरण शब्द 'परि' एवं 'आ' उपसर्गपूर्वक 'वृत्' धातु से ल्युट(अन्) के योग से निर्मित है जिसका अर्थ है— **“परितः आवरणम्”** अर्थात् प्राणी जगत को आवरित किये हुये वे सभी परिस्थितियाँ जिनकी वजह से पृथ्वी पर प्राणी मात्र का जीवन संभव हुआ है। संस्कृति शब्द **सम्** उपसर्ग कृ धातु तिन प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ है— सुधारणा, सुन्दर बनाना, पूर्ण बनाना।

यजुर्वेद में पर्यावरण को निम्न रूप में परिभाषित किया गया है— **“परितः आवरणोऽतित पर्यावरणम्”** अर्थात् जो चारों ओर से आवृत करता है वही पर्यावरण है।

2. भारतीय संस्कृति में पर्यावरणीय संवेतना — भारतीय संस्कृति में पर्यावरण को दैवतुल्य स्थान प्राप्त है। भारतीय संस्कृति के संस्कृत साहित्य की एक कहावत के अनुसार **—“प्रक्षालानादि पश्य दूरादस्पर्शनं वरम्।”** अर्थात् पैर को कीचड़ में सानकर धोने से अच्छा है कि पैर में कीचड़ लगने ही ना दिया जाए। संस्कृत साहित्य का उक्त वाक्य प्रकृति में प्रदूषण के निषेध की ओर संकेत करता है। प्राचीन भारतीय चिन्तन की दृष्टि से पंचतत्वों में असंतुलन की स्थिति को ही पर्यावरण प्रदूषण की संज्ञा दी गई है। तुलसीदास जी लिखते हैं कि — **“क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा। पंचरहित यह अधम शरीरा।”** अर्थात् जो ब्रह्माण्ड में है वही शरीर में है, ब्रह्माण्ड बिगड़ेगा तो शरीर भी बिगड़ेगा। वेदों में कहा गया है कि, **“पूर्णभद्रः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।”** अर्थात् हम प्रकृति से उतना ही ग्रहण करें जितना हमारे लिये आवश्यक हो तथा प्रकृति की पूर्णता को क्षति ना पहुँचे। **“ऊँ षोः शान्तिरतिरक्षशान्तिः, पृथ्वी शान्तिः रापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पियः शान्तिर्विश्वदेवाः शान्ति ब्रह्मशान्तिः सर्वशान्तिः शान्तिरेवशान्तिः सा मा शान्तिरेवथ।। ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।”** यजुर्वेद के उक्त श्लोक में प्रकृति व प्रकृति के सभी तत्वों की शान्ति व संतुलन की कामना भारतीय संस्कृति के प्रकृति प्रेम व संरक्षण की अवधारणा को उजागर करती है।

वेदों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि मानव शुद्ध हवा में श्वास ले, शुद्ध जलपान करे, शुद्ध अन्न—फल का भोजन करे, शुद्ध मिट्टि में खेले कूदें और कृषि करे तब ही वेद प्रतिपादित उसकी आयु भशतम् जीवम् शरदः शतम् उसकी विज्ञान के अनुसार प्रकृति सदैव तीन रूपों में विद्यमान रहती है— कण, प्रतिकण और विकरण। वेदों में भी प्रकृति के तीन मूल वर्ग— **त्रयःकृत्यति भूवनस्यरेता** स्वीकार किये गये हैं।

1.1. भारतीय संस्कृति और वायु प्रदूषण व संरक्षण :- प्राचीन भारतीय संस्कृति में वायु को प्रकृति अर्थात् भगवान(भूमि, गगन, वायु, नीर) के महत्वपूर्ण घटक के रूप में स्वीकार कर वरुण भगवान के रूप में देवता माना गया है। वायु के जीवनदायी स्वरूप को ऋग्वेद के दसवें मंडल के 186 वें सूक्त में इस प्रकार वर्णित किया गया है — **“वात आ वातु भेषजम्, स नो जीवात्वे कृषि।”** अर्थात् हे! वायु तुम स्वास्थ्य की ओषधि बनकर बहो। तुम्हीं हमारी जीवन—जड़ी हो आदि। **“शं न दूषिपरो अभिवातु वात।”** अर्थात् वायु एक स्थान पर बद्ध न होकर दूषिपर अर्थात् स्वच्छ रूप से दारें—बाएँ प्रवाहित होता रहे। **“ना मेध्यं प्रक्षिपेदनाौ”** अर्थात् आग में किसी अपवित्र वस्तु प्रक्षेपण नहीं करना चाहिए, अन्यथा वह वातारवण को भी दूषित कर देता है। इसलिए कहा गया है कि शुद्ध वायु है तो लम्बी आयु है।

प्राचीन धर्मग्रन्थों एवं साहित्यों में यज्ञ को पर्यावरण व वायु शुद्धि की एक प्रभावी युक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। यजुर्वेद एवं पुराणों में यज्ञ की महत्ता को वेदों से अधिक माना गया है। प्राचीन ग्रन्थों में यज्ञ का तात्पर्य त्याग, समर्पण व शुभ कर्म के रूप में लिया गया है जिसके माध्यम से मूल्यवान पोष्टिक व सुगंधित द्रव्यों को अग्नि व वायु के माध्यम से समस्त संसार के कल्याण के लिए वितरित किया जाता है। इस धारणा में पोष्टिक व सुगंधित द्रव्यों के माध्यम से वायु को प्रदूषण मुक्त करने का मूल विचार ही समाहित है।

1.2. भारतीय संस्कृति और जल प्रदूषण व संरक्षण :- प्राचीन भारतीय संस्कृति जल में जल को सृष्टि के जीवन रूप में स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद में जल को विश्व का जन्म देने वाली श्रेष्ठ माँ कहा गया है— **“मातृतामा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जानित्री।”** वृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है — **“इमा आपः सर्वेषां भूतानां मध्वासामर्षोसर्वाणि भूतानि मधु।”** जल समस्त प्राणियों के लिए अमृत है। जल में अग्नि का वास होता है अतः नग्न स्नान वर्जित किया गया था। भारतीय धर्म ग्रन्थों में नदियों को पवित्र व देवीतुल्य स्वीकार किया गया है। मनुस्मृति पानी में मल—मूत्र व पीक त्याग को तथा अपवित्र वस्तुओं, रक्त व विष को जल में डालना निषिद्ध किया गया है। गंगाजल को सभी संस्कारों में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। **“कूप्रापुष्कारिणी वनानाम् चक्रुः क्रियास्तत्र च धर्मकाना”** जैसे—कुआँ, बावड़ी, तालाब, झीलों व झालरों का निर्माण राजा का प्रथम व पुण्य कर्त्तव्य माना गया है। **“जगताय प्रतप्तानां जलराशि च वाच्छतम्”** अर्थात् गर्मी व प्यास से व्याकुल जगत के लिये जल अनिवार्य है। जल को अशुद्ध करना धार्मिक व सामाजिक निषिद्ध कृत्य माना गया और इसके लिये दण्ड का प्रावधान भी था। निस्तानत दंपतियों के मोक्ष के लिए पेड़ लगाने या कुआँ या बावड़ी बनवाने की मान्यता थी।

1.3. भारतीय संस्कृति और मृदा(पृथ्वी) प्रदूषण व संरक्षण :- भारतीय संस्कृति सभ्यता के उदय काल से ही पृथ्वी को माता का दर्जा देती आई है। यद्यपि वर्तमान आर्थिक विकास की दौड़ में मातृवत् व्यवहार की इस धारणा में कमी अवश्य आई है। ऋग्वेद के पृथ्वी सूक्त में कहा गया है — **“माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः”**। प्राचीन भारतीय संस्कृति में भूमि को माँ का दर्जा दिया गया है किन्तु वर्तमान भौतिकवादी युग में भूमि की छाती चिरकर अपशिष्ट व प्रदूषक भरे जा रहे हैं। प्राचीन इतिहास भी इस बात की गवाही देता है कि जिन सभ्यताओं ने भूमि को बंजर होने दिया वे सभी आज इतिहास के पन्नों में दर्ज हैं। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त के कुल 63 मंत्रों में पृथ्वी की महत्ता को उजागर करना भूमि के महत्व को उजागर करता है। यजुर्वेद में भूमि की अशुद्धि को निषिद्ध करते हुये उल्लेख है कि — **“प्रथिवी मातर्मा हिंसीर्मा अहं त्वाम्”** — यजुर्वेद 10/23 अर्थात् हे! माता तुम हमारा पालन पोषण उत्तम रीति से करती हो। हम कभी भी तुम्हारी हिंसा(दुरुपयोग) न करें। प्राचीन धर्मग्रन्थ भूमि को धन्य—धान्य देने वाली माँ के रूप में स्वीकार करने का उल्लेख अनेक जगहों पर करते हुए धरती माँ को नमन किया गया है।

आज के ऐश्वर्य प्रधान भौतिकवादी युग में हमारी प्राचीन मान्यताएँ व परम्पराएँ तिरोहित हो गई हैं। हमारी गौरवमयी संस्कृति परिवर्तन के इस दौर में ना तो पूर्णतः पाश्चात्य हो पाई है और ना ही पूर्ण भारतीय रह पाई है अपितु यह एक ऐसे संक्रमण के दौर में है जिसमें हम हमारी प्राचीन मान्यताएँ व परम्पराओं को खोते जा रहे हैं। हमारी प्राचीन परम्पराएँ वर्तमान भौतिकवादी युग में मात्र प्रतीकात्मक स्वरूप में ही शेष बची हैं जबकि हमारी प्राचीन संस्कृति प्रकृति को प्राणी मात्र के लिये सर्वाधिक फलदायी मानती रही है, इसलिए प्रकृति को सुखदायी जीवन का अभिन्न अंग मानते हुये उसकी पूजा—अर्चना की व्यवस्थाएँ हमारे प्राचीन धर्म शास्त्रों में की गई हैं।

1.4. भारतीय संस्कृति व वन संरक्षण :- पेड़ों को भारतीय संस्कृति के संरक्षक व पोषक माना गया है। ऋषि—मनीषियों ने अपने आश्रम व गुरुकुलों में एवं उसके आस—पास प्रकृति को पल्लवित—पुष्पित किया है। प्रकृति के विभिन्न अंगों यथा भूमि, जल, वायु, वृक्ष, जीव—जन्तुओं को पूज्यनीय मानकर उनकी सुरक्षा, संरक्षण व संवर्द्धन की व्यवस्थाएँ की गई हैं। वृक्ष को भगवान नीलकण्ठ का रूप माना गया है जो वायुमंडल की विषेरी गैसों को पीकर अमृतमयी ऑक्सीजन गैस हमारे लिए दान स्वरूप बाहर छोड़ते हैं अतः वृक्षों को सींचना भगवान शिव को जल अर्पण के समान माना गया है। हमें भी वृक्षों के त्याग की भावना से त्याग का गुण अपनाने का संदेश वेदों में जगह—जगह दिया गया है। तुलसी को विष्णु प्रिया, केला को ब्रह्मस्पति और संतान दाता, पीपल को ब्रह्मा, विष्णु व महेश के वास के रूप में पूजा जाता है। कार्तिक मास की शुक्ल की नवमी को आँवला नवमी भी कहते हैं। हरियाली अमावश्या व बंसत पंचमी आदि पर्वों पर वृत् उतपास के साथ वनस्पति पूजा होती है। हमारी संस्कृति में भक्त व भगवान को चन्दन के तिलक की परम्परा हमें प्रकृति प्रिय संस्कृति बनाती है। पीपल और बरगद के पेड़ों को ब्राह्मण का दर्जा दिया गया है और इन्हें काटना ब्रह्म हत्या माना गया है।

वैशाख में पीपल पूजा, कार्तिक में आँवला व तुलसी पूजा, मिगसर मास में कदम्ब की वृक्ष को पूजने की परम्परा भारतीय संस्कृति में सदियों से चली आ रही है। विल्व वृक्ष के पत्तियों भगवान शिव को अर्पित की जाती हैं, कदम्ब के फूलों से भगवान विष्णु की पूजा की जाती है। ब्रह्माण्ड पुराण में लक्ष्मी को कदम्ब वनवासिनी, पद्म पुराण में भगवान विष्णु को पीपल वृक्ष, भगवान शिव को वटवृक्ष और ब्रह्मा जी को पलास वृक्ष के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है। भारतीय प्राचीन धर्मग्रन्थों में पेड़ों के लिये उचित स्थान की भी व्यवस्थाएँ की गई थीं जैसे— नीम का पेड़ गाँव की चौपाल पर और पीपल का पेड़ गाँव के बाहर जलाशयों के निकट लगाने की परम्परा सदियों पुरानी है। वृक्षों व जीवों के पूजने की परम्परा भारत में सिन्धु घाटी सभ्यता से ही प्रचलित है। सिन्धु घाटी सभ्यता के अवशेषों में इस बात के स्पष्ट प्रमाण हमें प्राप्त हुये हैं। भारतीय संस्कृति में वृक्षों के संरक्षण की भी उचित व्यवस्था रही है, जैसे— वैसाख महिने में भारतीय नारियों द्वारा पीपल के वृक्ष को सींचना, गोचर भूमि(किसी धार्मिक स्थल से संलग्न पशुचारण भूमि), डोली(किसी मठ या मंदिर के पुजारी को दी गई व्यक्तिगत वन भूमि) और ओरण(देव स्थान से जुड़ा संरक्षित स्थान) आदि की परम्पराएँ वृक्षों के संरक्षण के ही उदाहरण हैं।

वैदिक साहित्य में वनों की महत्ता को उजागर करते हुये लिखा है कि — **“ततः शिव कुसुमित बालपादपः छायाफलादयर्थं वृक्षमाश्रयते जनः।”** अर्थात् वृक्ष सदासिव होते हैं अतः फल एवं छाया के लिये लोगों द्वारा लगाये जाते हैं। महाभारत के भीष्म पर्व में लिखा है कि — सर्वकाम फलाः वृक्षाः। मत्स्यपुराण में कहा गया है कि— **“दसकूपसमावापी दसवापीसमाह्वः दसहृदसमः पुत्रो दसपुत्रोसमो दुमः।”** अर्थात् दस कुओं के समान पुण्य एक पोखर बनाने में, दस पोखरों का पुण्य एक तालाब बनाने में, दस तालाब बनाने का पुण्य एक पुत्र से और दस पुत्रों के समान पुण्य एक वृक्ष सींचने से होता है। विष्णु पुराण में **“एक वृक्ष सींचने का पुण्य सौ पुत्रों से भी अधिक”** माना गया है। धार्मिक व सामाजिक संस्कार के स्थलों पर त्रिवेणी(पीपल, बरगद, नीम), पंचवटी(नीम, पीपल, बरगद, जामुन, आँवला) तथा हरिशंकर(बरगद, पीपल, पाकड़) के वृक्षों को सींचना, शमशान, सराय व धार्मिक महत्व के स्थानों पर छायादार व फलदार पेड़ लगाने की परम्परा भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से रही है।

रामायण में काण्ड, महाभारत में पर्व और श्रीमद्भागवत में स्कन्ध शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनका अर्थ क्रमशः तना, पोर और प्रधान शाखा से है। रामायण काल में भगवान श्रीराम का वनवास, लंका में अशोक वाटिका में माता सीता का ठहराव वृक्ष संरक्षण के उदाहरण की हैं। भगवान श्रीराम ने दण्डकारण्य, इन्द्र ने नन्दनवन, कृष्ण ने वृंदावन, सौनाकादि ऋषियों ने नेमिशारण्य वन तथा पाण्डवों ने खाण्डक वनों को सींचित कर समाज में वन संरक्षण व संवर्द्धन का संदेश दिया। भारतीय ज्योतिष शास्त्र में भी राशि के अनुसार भिन्न-भिन्न पेड़ों की पूजा की महत्ता दर्शायी गई है, जैसे – मेष व वृश्चिक राशि के लिये खैर के पेड़, वृषभ व तुला राशि के लिये गुलर का पेड़, कर्क राशि के लिये पलाश, सिंह राशि के लिये आक, धनु व मीन राशि के लिये पीपल, आदि पेड़ों को पूजनीय बताया गया है। भारतीय संस्कृति में विभिन्न उत्सवों, त्योहारों व सांस्कृतिक परम्पराओं में भी विभिन्न पेड़ों की पूजा-अराधना करना हमारी संस्कृति का हिस्सा रहा है।

1.5. भारतीय संस्कृति और वन्य जीव संरक्षण :- वन्य जीव-जन्तु भी प्राचीन भारतीय संस्कृति में शुद्ध व संतुलित पर्यावरण का अभिन्न अंग माने गये हैं। प्रकृति के अन्य पक्षों की तरह जीव-जन्तुओं को भी पूजनीय माने गये हैं। भारतीय संस्कृति में दस अवतारों में से चार अवतार पशुओं व जन्तुओं से संबद्ध हैं जैसे- मत्स्य अवतार, वराह अवतार, कच्छप अवतार तथा नृसिंह अवतार। भारतीय संस्कृति में भगवान गणेश, भगवान हनुमान व नागपूजा तथा हंस, मूसक(बूहा), शेषनाग, नन्दी(बैल) आदि को विभिन्न देवी-देवताओं के साथ संबद्ध कर इनके पूजनीय स्वरूप को उजागर किया गया है। भगवान गणेश गजराज(हाथी), भगवान हनुमान वानर(बंदर) के संरक्षण के प्रतीक हैं। गरुड़ को भगवान विष्णु का वाहन माना गया गरुड़ पक्षी के नाम से गरुड़ पुराण की रचना इसके संरक्षण की व्यवस्था है। रामायण में जटायु पक्षी को अपने योगदान के लिए पूजनीय माना गया है। इस प्रकार भारतीय प्राचीन धर्म ग्रन्थों में विभिन्न पालतू व वन्य जीवों को विभिन्न देवी-देवताओं से सम्बन्ध कर उनके संरक्षण की व्यवस्थाएँ की गई हैं। गोपाष्टमी, बछ्बारास के पर्व, गोवर्द्धन पूजा की व्यवस्थाएँ गौ वंश की सुरक्षा व संरक्षण के लिए की गई थी। कृषि फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले चूहों का आहार करने वाले साँपों के प्रति श्रद्धा प्रकटीकरण नाग पक्षी व गोगानवमी के पर्व मनाये जाने की परम्परा आदिकाल से चली आ रही है। शनिवार के दिन कीड़ी नगरों(चींटियों के आवास) को सींचने की प्रथा उन चींटियों की सुरक्षा की व्यवस्था है जो हानिकारक उदई व बर का नियन्त्रण करती हैं और नई मिट्टी के निर्माण में सहायक होती हैं। मृत जीवों को पर्यावरण से हटाकर पर्यावरण को शुद्ध रखने में सहयोगी कौओं के प्रति श्रद्धा स्वरूप श्राद्ध पक्ष में उनको भोजन खिलाने की परम्परा है। विवाह के समय तोरण में पक्षियों की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। भोजन से पहले एक रोटी(पाँच ग्रास) चींटी, कौआ, कुत्ते, गाय आदि के लिए निकालकर खिलाने की व्यवस्था इन जीवों के संरक्षण का प्रतीक है। संसार में पर्यावरण संरक्षण का प्रथम राजकीय प्रयास ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में सम्राट अशोक ने वन्य जीव-जन्तुओं के शिकार पर प्रतिबंध लगाकर किया जो आज भी सम्राट अशोक के शिलालेखों में उकेरित है।

वैदिक काल से आज तक भारतीय संस्कृति की विशिष्ट विशेषतायें स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में “**मा हिंस्यात् सर्वभूतानी**” अर्थात् किसी भी जीव को मत मारो यह आदेश था। यजुर्वेद में भी उद्घोषित हुआ है कि “**अग्न्या यजमानस्य पशून्पाहि**” अर्थात् हे मानव पशुओं को मारने की बजाय उनकी रक्षा करो, अतः हम वैदिक काल से ही सहिष्णुता, उदारता, सामाजिक संस्कृति, अहिंसा आदि सिद्धान्तों को अपनाकर अनेकता में एकता को लिये हुये हैं और राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक संतुलन बनाये हुए हैं।

निष्कर्ष – भारतीय संस्कृति और पर्यावरणीय संरक्षण शीर्षक से प्रस्तुत इस लघु शोध के अंतर्गत वर्तमान भौतिकवादी मानव सभ्यता के स्वार्थपरक आर्थिक कार्यों द्वारा प्रकृति में हुये विनाश को इंगित करते हुये प्राचीन भारतीय संस्कृति में प्रकृति के विभिन्न तत्वों व पक्षों की महत्ता को उजागर करते हुए उनकी सुरक्षा व संरक्षण की विभिन्न व्यवस्थाओं का उल्लेख किया गया है तथा भारतीय संस्कृति के प्रकृति सौहार्द स्वरूप को उजागर करने का प्रयास किया गया है। भारतीय मूल्य एवं परम्पराएँ सभ्यता के आदि काल से ही “**वसुदेव कुटुम्बकम्**” और “**सादा जीवन उच्च विचार**” की रही हैं। इन दो वक्तव्यों में भारतीय संस्कृति की पृथ्वी पर प्रकृति व प्राणी मात्र के लिये कल्याण की भावना निहित है किन्तु वर्तमान विश्व की अंधी विकास की दौड़ में भारतीय संस्कृति की ये धारणाएँ व परम्परायें क्षीण होती प्रतीत हो रही हैं जो ना केवल भारत देश अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए एक खतरे की घंटी हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी कहा था कि – “**प्रकृति सभी जीवों का भरण-पोषण करती है किन्तु एक भी लालची की तृष्णा को शांत करने में अक्षम है।**” सन् 2000 में अर्थचार्टर कमीशन के सम्मेलन में पर्यावरण संरक्षण के 22 सूत्र चयनित किये गये जिनका उल्लेख पहले से **अथर्ववेद** में उपलब्ध है। सम्मेलन के आखिरी दिन अथर्ववेद के **पृथ्वीसूक्त** की चर्चा की गई यह तथ्य भारतीय

संस्कृति के गौरवमयी विचारधारा को प्रतिपादित करने के लिये पर्याप्त है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वर्तमान पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान वैदिक संस्कृति की परम्पराओं में निहित है अतः अब इस वक्तव्य को चरितार्थ करने का समय आ चुका है- “**वेदों की ओर लौटो**” अर्थात् “**प्रकृति की ओर वापिस चलो!**”

REFERENCES

1. व्यास, हरिश्चन्द्र : असंतुलित पर्यावरण और विश्व, आदर्श प्रकाशन मंदिर, बीकानेर, 2016.
2. चौधरी, मृदुला : प्राचीन भारत में पर्यावरण(एक ऐतिहासिक अध्ययन गुप्तकाल में पूर्व मध्य युग), गयाघाट वाराणसी, पृष्ठ-1.
3. श्रीवास्तव, उर्मिला : महाकवि कालीदास की शकुन्तला और पर्यावरण(आलेख), पृष्ठ-335.
4. गुलाटी, रमेश : प्राकृतिक संसाधन एवं पर्यावरण, प्रियंका पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2014.
5. तिवारी, पिंकी : संस्कृत साहित्य में पर्यावरण चेतना के संदर्भ में आधुनिक कवि डॉ. राधेश्याम गंगवार के साहित्य का विवेचन(आलेख) 2016, पृष्ठ-86-88.
6. ऋग्वेद, 1/90/6-8, यजुर्वेद, 13/27-29.
7. मनुस्मृति, 4/56.
8. गौतम, रामहेत, संस्कृत साहित्य और पर्यावरण सुधार(आलेख), 2014, पृष्ठ-21-24.
9. खण्डूडी, वीरराघव : संस्कृत साहित्य में पर्यावरण(आलेख), राजकीय स्नातक महाविद्यालय, उत्तरकाशी, 2017, पृष्ठ-157-160.
10. सिंह, रेनु : वैदिक साहित्य में पर्यावरण चेतना(आलेख), गोरखपुर, 2015, पृष्ठ-4-6.
11. कुर्रें, मनीष कुमार : भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संचेतना(आलेख), 2020, अंक-156.
12. बंसल, राजीव : भारतीय संस्कृति और पर्यावरण संरक्षण(आलेख), पर्यावरण भारत, 2021.
13. कुमार, सतीश : भारतीय संस्कृति और पर्यावरण(आलेख), पर्यावरण विमर्श.
14. बहुगुणा, आर. : भारतीय संस्कृति और पर्यावरण(आलेख), इंडिया वाटर पोर्टल.
15. माहेश्वरी, शंकरलाल : भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण(आलेख).